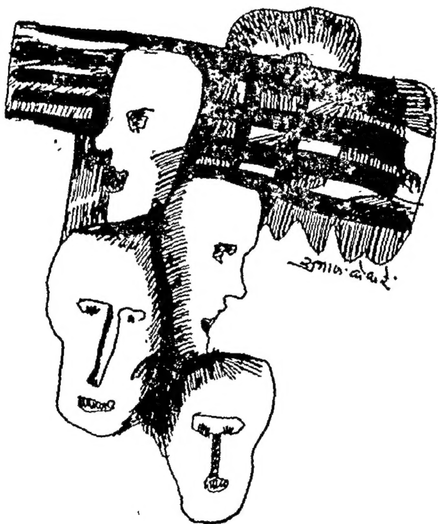
लोग जहां खड़े हैं



राजस्थान साहित्य अकादमी उदयपुर के
आर्थिक सहयोग से प्रकाशित



लोग जहां खड़े हैं



अम्बिका दत्त

प्रकाशक : चयन प्रकाशन
हनुमान हत्था, बीकानेर

प्रथम संस्करण : बसन्त पंचमी, 1987

मूल्य : तीस रुपये मात्र

मुद्रक : एस० एन० प्रिंटर्स
नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

LOG JAHAN KHADHE HEN (Poetry)
by Ambikadutt

Rs. 30.00

एक कवि को आपसे मिलाने के प्रसंग में

अम्बिका दत्त कोई बड़ा, प्रसिद्धि प्राप्त, स्थापित कवि नही है। वह वयस्क, गंभीर धीर-मति कवि भी नही है। देखने में लड़का लगता है, उसी तरह बातचीत करता है, हंसता है। हसना और फिर बातचीत शुरू करना और बातचीत को तर्क-संगत और तथ्यों के साथ मजबूत करते जाना उसकी विशेषता है। तर्क-संगति और बौद्धिक-बुनावट के बीच भी वह मनुष्य और उसके भविष्य की चिन्ता करता जाता है। बातचीत का तनाव अम्बिका दत्त के चेहरे पर भी देखा जा सकता है।

···वह नौकरी पर जा रहा था। झालावाड़ से दूर, कस्बा मनोहरथाना, जहा वह नायब-तहसीलदार था। मैं उसे कविता सुनाने के लिए ठहरा लेता हूं। शायद अक्टूबर था या नवम्बर, हल्की सर्दी की रातों मे संगीत या कविता सुनने की बात ही दूसरी होती है। अम्बिका दत्त बहुत-सी रचनाएं सुनाता है। हाड़ौती के एक खास उच्चारण का मजा लेते हुए मैं कविताए सुनता हू। दूसरे दिन सुबह की बस पकड़ कर अम्बिका दत्त चला जाता है। जाते हुए वह कह जाता है कि ठीक समझूं तो उसकी कविताओं पर कुछ लिख दू। वह पास के रिश्ते मे मेरा भतीजा है।

हमारे समय की कविताओं के लिए बहुत-सी बातें कही जा सकती हैं लेकिन दो विशेषताए बहुत साफ-साफ नजर आती है। एक विशेषता जो सबसे बड़ी, सबसे महत्वपूर्ण है वह कविता और मनुष्य के बीच की रिश्तेदारी की है। हजारों-हजार रूप मे मनुष्य कविता मे आ गया है। कही से कविता शुरू हो या किसी भी जिम्मेदार कवि की कविता हो वह मनुष्य से अलग नही होगी। यह बात भी

दिखाई देती है कि और मनुष्य की यह रिश्तेदारी सघन और सगुण है मनुष्य के लोक-परलोक और जन्मान्तरवाद की नैतिकता अब हमारे लिए ज्यादा अर्थ नह रखती। मनुष्य के आज का दुःख, उसके कारण, दुःख मुक्ति के सम्भाव्य उपाय और दुनिया का बेहतर भविष्य हमारी कविता का हिस्सा हो गया है। उसी मे हम सौंदर्य, सवेदनशीलता तथा काव्य चारुत्व ढूढने मे लगे हैं।

दूसरी विशेषता का सम्बन्ध भाषा से है जिसके जरिए हम सम्प्रेषण की कलात्मकता या चारुत्व प्राप्त करते है। आज की कविता मे यह नजर आता है कि विशेषण युक्त शब्दो का उपयोग कम हो गया है और उन पद-बधों का प्रयोग भी कम हो चला है जिन्हें हम थोड़े दिन पहले कविता को परिवर्तन का औजार बनाने के सिलसिले मे करते थे। पहले शायद हम यह सोचते रहे थे। एक कविता या कहानी या विचार के छपते ही परिणाम की तीव्र क्रिया शुरू हो जायेगी और अच्छे परिणाम निकल आयेंगे। लेकिन शब्दो के तनाव को सामाजिक तनाव का हिस्सा बनाने के बीच बहुत-सी मनःस्थितियों का ज्ञान अब हमें हो गया है। इसलिए काव्य-भाषा में हम मनुष्य के दुःख को ही कला की लय के साथ जोड़ने की कोशिश कर रहे है।

अम्बिका दत्त की कविताओ मे मनुष्य की उपस्थिति उसके लाचार या गरीब होने के कारण नही है और न इस कारण है कि वह कोई सलीब उठाये हुए मसीहा है और न इस वजह से ही कि उसके पास मनुष्य को दुःख-मुक्त करने के 'राहत कार्य' हैं बल्कि इन सबमे अलग उस शक्ति के कारण जिसे वह 'नदी की पत्थर काटने की ताकत की' तरह अनुभव करता है और उसी को प्रणाम करता है:

अब मैंने नदी को देख लिया है
और पहचान लिया है
नदी की पत्थर काटने की ताकत को
बिना घिसे—जमीन के ऊपर बहते रहकर
मैं नदी को अभिवादन करता हू
प्रणाम करता हू
नदी की पत्थर काटने की ताकत को।

आदमी के पास नदी की-सी ताकत की पहचान और अपनी जमीन को अक्षत रखने की इच्छा का दर्शन एक कविता मे ही नही, अम्बिका दत्त की लगभग सभी कविताओं की ताकत है। यह ताकत बहुत से कविता रूप लेती है किन्तु हर बार

आतंक के सिलसिले मे वह एक सूक्ष्म दृश्यांकन करता है जिसमे वह नितान्त अकेला रह जाता है एक पीली और मद्धम रोशनी के साथ।

लोगो ने देखे
चाकू के सौ फाल—एक साथ
खून की एक पतली धार
उदास-सी सिमट गई रोशनी
बिजली के खभो के आस-पास
....
पीली लालटेन के कधो से
मैं अकेला ही ढो रहा था
बहुत सारा अधेरा
मै अकेला था, नितात अकेला !

काव्याभ्यास के दौरान हर नये कवि को प्रकृति के साथ अपने मन को जोडना पडता है। प्रकृति और मनःस्थिति की सादृश्यता कभी-कभी बडी अर्थवान कविता बन जाती है। अम्बिका दत्त प्रायः कविता को प्रकृति के जरिए विकसित करता है। इसमे भी 'हवा' एक खास शब्द है जिसे वह बहुत-से हल्के और गहन संदर्भों में काम मे लेता है। एक धर्मोन्माद की रात का दिल दहलाने वाला वर्णन वह मुझसे कर चुका था। अब वह वर्णन मैंने उसकी कविता 'उस रात' मे पढा जिसका अन्त करते हुए धर्म की पाशविकता के साथ अपनी आत्मा के बलात्कार की बात कहकर उसने धर्म के सारे रूमानी भावालोक की धज्जियां उडा दी हैं।

सडक पर अस्पष्ट से
नजर आ रहे थे
खून के पद चिह्न
चुपचाप रो पडा, मेरा मन
सचमुच
मेरी आत्मा के साथ
बलात्कार किया था धर्म ने
उस रात

मैं अम्बिका दत्त के सूक्ष्म दृश्यांकन की बात कर चुका हूं उसी पर अधिक बल देना चाहता हूं और उदाहरण के लिए इस संग्रह की एक कविता 'तीसरे प्रहर की प्रतीक्षा' के कुछ अंश काव्य चारुत्व के लेता हू ।

चारों तरफ, उबड़-खाबड मैदान मे
फैली है—चिनमिनाती धूप/सन्नाटा/
कभी तेज, कभी धीमे, कभी, मद्धिम
हांफ-हांफ कर बहती है
श्लथ— गर्म हवा

....

बहुत गहरी हो गई है अपनी जिन्दगी
कितना खालीपन है—मुंडेर से पानी के बीच
हम बहुत ऊपर चले आए शायद !
या पानी ही नीचे चला गया ?

....

उदास शाम के उतरने से पहले
यह अकेली प्रतीक्षा

....

दूर से सुनाई देती है
हल्की-सी गुर्राहट
धुंधला-सा दिखता है—कोई गुबार
अन्तिम वाहन है शायद—इस पथ का
चलो, उठें, चलें,
शाम होने से पहले
घर पहुंच जाएं तो अच्छा है।

यही मुझे भी पटाक्षेप करना चाहिए। अम्बिका दत्त के संग्रह में जिन्दगी की विसंगतियों, व्यवस्था की टुच्चाइयों और आज की जिन्दगी की बेइन्तहा परेशानियो पर कुछ कम कविताए नही है वे हमारे समय की जीवन्त रचनाए हैं।

उन पर लम्बी बात मैंने नहीं की है क्योंकि उनकी और हमारी पहचान अलग-अलग नहीं है।

हमारे समय के अंतरंग दु:ख को अम्बिका दत्त ने जिस तरह चित्रित किया है उसके साथ कथ्य और कला का विभाजन नहीं करना चाहिए।

बहुत-सी खामियों के साथ यह कविता-संग्रह मूल्यवान है।

30, अहिंसा पुरी — नंद चतुर्वेदी
उदयपुर

अनुक्रम

नदी दर्शन

मैं अब तक रस्सियां पूजता था
दुर्बल रस्सियां
क्योंकि
दुनिया के औजार
पत्थर को तोड़ते-फोड़ते थे
मगर काटते नहीं थे
काटती थी सिर्फ रस्सियां
धीरे-धीरे घिस कर
और सच ! याद आया
मैंने तब तक नदी देखी ही नहीं थी

मैं अब रस्सियों की पूजा नहीं करता
अब मैंने नदी को देख लिया है
और पहचान लिया है
नदी की पत्थर काटने की ताकत को
बिना घिसे—जमीन के ऊपर बहते रहकर
मैं नदी को अभिवादन करता हूं
प्रणाम करता हूं

नदी की पत्थर काटने की ताकत को

मैं अब रस्सियों की पूजा नही करता
मैंने नदी को देख लिया है।

उत्तर यात्रा

आज हमेशा इस बात के लिए कहते हैं
मुझे जलील करते हैं
कि मेरे चेहरे पर, एक और चेहरा चढ़ा हुआ है
बेशक ! मेरे असली चेहरे पर
एक और चेहरा चढ़ा हुआ है
मगर यह मेरी आदत नहीं—मजबूरी है
कैसे कायम रह सकती है
किसी भी आदमी के चेहरे की शक्ल
असली वैसी की वैसी—सुरक्षित
जब उसका पेट खा जाता हो—उसका चेहरा
फिर यहां तो चेहरे से
सिर्फ पेट की ही नहीं
कई अंगों की लड़ाई है
कोई आदमी
कभी भी नोचे हुए या फटे हुए
चेहरे में रहने की मज़बूरी
सिर्फ भुगतान है—पसन्द नहीं करता
इसके लिए जरूरी है

या तो वह अपना चेहरा ढके
आसपास से गुजरती भीड़ में से
कोई चेहरा चुनकर उससे
या फिर दूर जंगल में से
वहती नदी में डूब जाएगा।

वो लोग जो हमेशा कहते हैं
दुःख जाहिर करते है
इस बात के लिए—हल्ला भी करते है
कि आदमी के पास, दो चेहरे हैं
वे हमेशा सूचना देते हैं
कि—आदमी के पास दो चेहरे हैं
न जाने क्यों
वे यह क्यों नही कहते
कि आदमी के पास दो चेहरे क्यों है ?

वे जो असंतुलित करते है
मौसम का माहौल
शनै. वहती-वहती—हवा में से कोई रंग तोड़कर
अंगुली पर रेशम लपेट कर—कोई कविता वुनते है
वे अपनी सुविधा के लिए
शब्दकोश में से कुछ शब्द चुनते है
विलकुल ऐसा ही करते हैं वच्चे
जब अपने पांव पर थपेड़ते हैं—कच्ची गीली मिट्टी
वो लोग कविता में
चेहरों की जगह
शब्द प्रयोग करते है
और शब्दों के अर्थ उगाते नहीं—तलाशते है
ये उनकी अपनी मर्जी है
इसमें वहुत सारे रास्ते है

मैं आजकल कविता में
शब्दों की जगह
चेहरों का इस्तेमाल करता हूं
मेरी सबसे बड़ी हिम्मत है
मेरी सचाई कहने की आदत
और सच यह है कि–
मैं अपने खुद के चेहरे से बहुत डरता हूं

–जैसे कि यह कविता
सिर्फ/आदमी के दो चेहरे होते हैं
से लेकर/ दो चेहरे क्यों होते हैं तक
ईमानदार तो होती है
लेकिन किसी भी जिम्मेदारी की जहमत नहीं उठाती
सिर्फ सवाल ही ढोती है
इसके बावजूद
मैं निराश नहीं हूं/सोचता हूं
उत्तर यात्रा यहीं से शुरू होती है
क्योंकि कविता जितना तोड़ती है
उससे ज्यादा भरती है।
कविता, किसी भी भाषा का चेहरा बनने से पहले
शब्दों में मरती है।

सूरज की तकलीफ

वह यूं करके
मुट्ठी में दबाता है–कागज का मेमना
आश्चर्य ! यह क्या देखा उसने
उसकी अंगुलियों के बीच से
नहीं बहता पसीने का कोई रेला
और न ही रिसती है
कोई खून की रेखा–
यहां तक कि कोई द्रव भी नहीं
बल्कि, उल्टे रुख से
ऊपर चढ़ने लगती है
हाथ की नसों में सुन्न ।

क्या फर्क पड़ता है
एक आदमी को
शतरंज के मोहरे की तरह मुण्डी पकड़ कर
लाइन में सबसे पीछे से उठाकर
सबसे आगे
या कुछ आगे रख दिया जाए
आखिर लाइन जब तक रहेगी
किसी न किसी को तो
सबसे पीछे रहना है

यहां खत्म नहीं होती उसकी बात

उसे यह भी कहना है कि
वो जो, बस्तों में बंधे खेतों में
कटे हुए अंगूठे की फसल के बीच
जंग लगी/लोहे की जरीब पड़ी है
बुरा न मानों, मेरे मालिक !
यह जो मेरा बाप है
आज से नही
जन्म से गरीब है
और यह जो
बिना धुले/कलफ लगे कपड़े से ढका
जो मचान है
हां, जिसके घुटने में गठिया है
और आंखों में मोतियाबिन्द है
वो, मेरी मां है ।

मै देख नही सकता
मगर सुन सकता हूं
पास के मकान में कोई डिनर है
करड़-करड़ और चपड़-चपड़ को आवाज है
शायद ! हड्डियां सूखी है
मगर उनमे चिपका
मांस गीला है

मै देख सकता हूं

दिन ! दिन !! दिन !!!

बड़ी बेकली है
बड़ी बेचैनी है
मुक्त नहीं है-यह सुबह
पखेरू, इस धुंग्राते शहर पर
उड़ने से कतराते हैं
कोई बिजली का तार
छू गया है-उनकी पाँख से

उत्तेजनाओं से भरी दोपहरी
और बड़ा अकेला है मन
आदमी के स्वर में बड़ी खराश है।
पंखे में ग्रीस लगाना
इस साल भी रह गया

चौक से गुजर गया
कोई बेसुरा बैण्ड बाजा

पूरी तपेली भर कर बनती है
तीसरे पहर की चाय
अभी उबाल आना बाकी है
और अँगीठी धसकती जा रही है
बड़ा पतला है
इस वक्त की चाय का तेवर

लोग जहाँ खड़े हैं।

चिड़ियों के शोर से भर गया
पूरा का पूरा पेड़
अँधेरे उजाले मे बड़ा घालमेल है
सभी व्यस्त है—
अपने-अपने तरीके से
बहुत आसान नही है
सभी रंगों के घालमेल में
किसी रंग की
अपनी, निजी पहचान ।

कल – आज – कल

बीता हुआ कल
हमारी नाक के नीचे
डैने समेटे
दुबक कर चुपचाप बैठा है
बाहर धूप जो बहुत तेज है

आने वाला कल
हमारी भौहों पर
टाँगे फैलाए
पसर कर बैठा है/आराम से
बेफिकर/अनिश्चित
जिसे देखने भर की कोशिश में
आँखों में दर्द होने लगता है

और हमारा आज
हमारे सिर का ध्वनिहीन पसीना
जो कान के पास से
रेला बनकर बह रहा है
निः शब्द !

दिनचर्या

उठा हूं
सिर में भारीपन है
और जिस्म में है
अकड़न सी
अँगड़ाई लेकर
चट्-चट् तोड़ता हूं
नसों के बीच में उलझी
कच्चे सूत की सुबह
और फिर यूं
टूटन से ही शुरू होता है दिन—
साधने की कोशिश करता हूं
चश्मे की कमानी पर
सूर्य का सन्देश
कलम की स्याही से
कागज की सफेदी पर।
लिखने की कोशिश करता हूं
पीले गुलाब की धातुई गंध।

यह होते न होते
दिन भर चकरघिन्नी से घूमते
होटल के छोरे के पावों की थकान सी सांझ

घड़ी की सेकण्ड वाली सुई पर सवार होकर
शनैः शनैः
पड़ाव डाल देती है
मेरी पलकों के ऊपर
और भौंहों की नीचे वाली जमीन पर
मजबूर सा, मैं लेट जाता हूं
एक ठण्डी, सपाट
सीमेन्ट की काली पट्टी पर
....

—कि अचानक
टूटता है जेहन में मेरे
एक कांच का तारा
चुभता है खुपता है
कुछ, रंगीन किरच सा—
मेरे सिर के पिछले हिस्से में
गहरी नींद में होने के बावजूद
सोच सकता हूं, मैं
हो न हो
यह सुबह का सपना है ।

अभिजात्य के डर से

मैं क्यों चीखता हूं ?
कामनाओं के इस शहर में
....

कौन अमृत पुत्र है
जो सहृद सुधा रस बांटता है ?

तीव्र से तीव्रतर क्यों हैं
बनवती इच्छाओं के ज्वार ?

कांच के वातायन से
जब फिकता है—
दही का दोना
देश का दारुण्य उसे
नग्न, निवर्सन/ग्राकण्ठ तृप्ति में डूब
दीन हो चाटता है

मुझे बिलकुल भी शौक नहीं है
—कि मैं मानवता को शब्दों में नंगी करूं
लेकिन, मैं उसे नगी देखकर
चुप रहता हूं—
तो मुझ पर अभिजात्य होने का अपराध आता है।

युद्ध अवश्यम्भावी है

प्राण सोख लेता है
पानी/बाढ़ का
तहस-नहस कर देती है हवा
समूचे खयालों का घर
बीमारी का डर भी है
गरीबी के साथ-साथ
जीवन को जो बुढा रहा है
हरजाई मौसम—
सिर्फ हिसाब रखता है
शरीर पर पहने हुए कपड़ों का

जमीन के बीच
बारूद की बुवाई जारी है

यह फसल है—
सिर्फ कोढ़ियों को

तेल तो तिल्लियों में भी नहीं है
और न है-घासलेट के दुकानदार के पास
किसी भी सरकार के पास/तेलियों के पास भी नहीं
कब तक प्रार्थना करूँ
सिर्फ घानी के घूमते रहने की

बैलों की आँखों पर बंधी पट्टी
युद्ध की श्वेत पताका नहीं है
अपने लिये मजबूरी है
रास्ता न चुन पाने की

तेल तो तिल्लियों में भी नहीं है
युद्ध अवश्यम्भावी है ।

बर्फ और कपास

यह जो आप देख रहे है
जमीन पर गिरती हुई ताजा बर्फ
बिलकुल इसी तरह
कपास के पौधों की शक्ल में
जमीन में से उगती है, सचाई

पहले मेरा भी खून
कभी हुआ करता था
गुलमोहर के फूलों की तरह
चटक लाल !

इन दिनों
कटे हुए मक्खन की
बासी परत सा हो गया हू, मै
न जाने क्यों
मेरे ऊपर/गिरती ही नही
कोई बर्फ
न जाने क्यों
मेरे अन्दर/उगती ही नहीं
कोई कपास !

बसन्त गुजरते हुए

कहीं क्या छूट गया ?
कहीं कुछ छूट गया ?
लम्बे अरसे से/तुम्हारा/किसी का भी
खत नहीं आया
खाली-खाली सा है रास्ता
डाकिया आता है
दस्तक देकर लौट जाता है
-खत नहीं
लौटते हुए डाकिये को
पीठ भर दिख पाती है
उसके कन्धे पर लटके थैले में
कई सारे खत हैं
तरह-तरह की बातें हैं उनमें
उनकी तफसील बयान करना-नामुमकिन है
इतने सारे खत
मगर मेरे लिये एक भी नहीं
....
दरवाजे की दस्तक से दौड़ कर आता हूं
दरवाजा खोलते-खोलते
एक लिफाफा देहरी पर छोड़ कर
चला जाता है, वह-
सुनसान गली में

अपने दरवाजे पर खड़ा हूं मैं
हाथ में लिफाफा लिये
लिफाफे पर मेरा पता लिखा है
मगर उसके अन्दर कुछ भी नहीं है
लिफाफा खाली है
हाय राम ! अब क्या करूं ?
पूरा का पूरा बसन्त गुजर गया
मेरे नाम–
मौसम का कोई संदेश ही नही आया
अनगिनत फूल खिले सृष्टि में
मैं कोई कविता ही नही लिख पाया ।

कविता के विचारवान होने ने

लगता है कविता के विचारवान होने ने
मुझे निचोड़ दिया है
तभी तो
मैने रसमयी कविताएँ लिखना छोड़ दिया है

अब मुझे कहाँ दिखाई देती है
बच्चों के चेहरों पर निश्छल मुस्कान
मै तो उनके शरीर में उतर कर
उनकी पसलियाँ गिनना चाहता हूं
उनके वस्त्रों में रखे
उनके दिमाग को पढ़ना चाहता हूं
जो उनमे, उनका बचपन
छीनना चाहता हूं

न जाने तुम किसकी आँख से चुरा लाते हो
सांझ के रंग का सिंदूरी काजल
मेरी आँखो ने मोर पंख भी चुनने चाहे
तो पलकों पर नागफनें उग आईं
बेशक यह उनके तूफान में गीत गाने की उमर है
मै उनके लिये कोई गीत नहीं लिख पाता

मैं तो सिर्फ ठगा सा देख रहा हूं
उस तूफान को
जो उन्हें उलटकर रख देगा
उन सबके सप्लीमेन्ट्री आएगी
उन सब परीक्षाओं में
जो वे देंगे
जीवन भर— ।

कभी भी जब

कभी भी जब
आत्महत्या कर लेता है
वह कमजोर लड़का
या फिर सुबकती है/नादान लड़की
शाम के वक्त/देहरी पर बैठकर

रुक गया है/सारा का सारा
बहता हुआ-लावे सा मौसम
साफ नजर आती है, उसके बीच
-तरती हुई/
सन्नाटे की निर्वस्त्र देह
तब जोर से बजता है
खतरे का सायरन
लगातार झनझनाने लगती है
बारीक घण्टियों की आवाज
जिन्दा रहने को मजबूर शवों के पास से—
गुजरती है कविता
थरथराती जमीन पर
करवटें बदलता है
सिर्फ एक कटा हुआ हाथ
अंगुलियों के टपोरों से
हौले से,
छूता हूं मैं उसे।

ईश्वर का बीज

निर्विवाद है मेरी ईमानदारी
मैं ईश्वर को नहीं मानता
उसके लिए
कोई जरूरी भी नहीं है
मेरा ईश्वर को मानना
या, न मानना
मैं ईश्वर को मानने से पहले
जानना चाहता हूं
उन सब कठिन सच्चाइयों को
जो ईश्वर की आवश्यकता के नजदीक लाती हैं

ईश्वर कोई विटामिन की गोली नहीं है।
मेरी निगाह में
ईश्वर एक गेहूं का बीज नहीं है
जिसे अंकुर बनकर फूटने के लिये
जमीन फोड़नी पड़ती है
और जितना लड़ना पड़ता है
जमीन फोड़ने के लिये जमीन से
उससे पहले/उससे ज्यादा
जमीन से बाहर आने के लिए
लड़ना पड़ता है
अपने आप को तोड़ने के लिए

आस्थाओं के बीच से, अजर

संज्ञाएँ देता रहा
तुम्हारे मनोभावों को
विचारों को
जन्मजात रुग्णताओं को भी
मैं/अभिव्यक्ति के लिए

तुम्हारे जटिल विचारों को
मूर्त रूप देते हुए
कितना–कितना, क्लिष्ट हुआ मैं

निरन्तर जूझता रहा
तुम्हारी अव्यक्त पीड़ाओं की भाषा जुटाते
कितनी उत्तेजनाएँ सहीं
तुम्हारी नासमझ/भावुक
संवेदनाओं के बीच/तब
जब तुम सम्प्रेषण की चौखट पर
दस्तक दे रहे थे

बिछाता रहा
मनस से वचन तक के
अनासक्त पठार खण्डों पर
शब्द-शब्द दूब !
रचता रहा
संगीत की कठिनतम रचनाएँ

लेकिन आस्थाओं की
अनचाही/उग आई
खरपतवार के बीच
तुमने मुझे
जब-तब/बेकार
एक बार नहीं/अनेक बार
निरर्थक बोया
बिना सोचे बोते रहे

मुझे दोष मत दो—
कि मैं उगा नहीं
मैंने अपनी पूरी ऊर्जा के साथ
जमीन में से उगाया-अपने आप को
सच बोलो !
सृजन में क्या शब्द का सहयोग नहीं है ?
लेकिन अक्षरों की फसल
तुम काट कर घर ला पाए ?
नहीं न !
इतना पुरुषार्थ तुममें कहाँ था

नैतिकता,
शब्द की नहीं संस्कार की होती है ।

ऋतु-चर्चा

पेड़ की सबसे ऊपर की टहनी पर
फूटती है/
जब मुलायम कोंपल
मेरे अन्दर जागती है
नीम गर्म चैत की आग
अन्दर ही अन्दर फैलने लगता है
अनागत, ऋतवत् संगीत

हवा, दूर-दूर तक फैला देती हैं
अपने रेशमी, सुगंधित अयाल
क्षितज पर खड़ा होता है/कोई
लिये हुए
साँवरी, सलोनी, काजली—गुलाल

रुक-रुक कर चलता है
अनुगूंजों का क्रम
थम-थम कर/वक्त देता है थाप
न जाने क्यों/अनवरत बहते-बहते
नदी, ठिठक कर
अपने ही बारे में सोचती है/कुछ
अपने आप ।

पुनर्रचना

एक-एक कर
झर जाते हैं
उसके सारे पुराने, पीले, पके हुए पत्ते
तब निर्वसन होती है
उसकी चिकनी, सुंती हुई, मांसल
ऊपर की ओर तनी हुई
लम्बी-लम्बी शाखाएँ

मौसम में से चुनती है/वह
अपने लिये
एक मन पसंद राग
हल्के से
उसके हाथों की अँगुलियों के पोरों पर
एक मुस्कान फूटती है
फिर वह, हँसने के लिये
अपने में से उगाती है
बहुत सारे, कोमल-कोमल
दुध-मुँहे पत्ते
हरे, ललाल लिये हुए

अभी-अभी हवा के साथ
कई पत्तों के साथ
खिल-खिला कर, हँसी है, वह !

कविता

कोई नहीं आ रहा
तुम तो बेकार ही
जरा-जरा सी आहटों पर कान दे रहे हो
सारा का सारा वक्त
गुजर रहा है– एक गिलगिली सी चाल से
तुमसे किसने कहा–तुम इन्तजार करो
न गर्मी है, न सर्दी है
बड़ा दरम्यानी कद का मौसम है
देखो जरा इन लोगों को/कितने खुश हैं
पत्थरों पर सीपियाँ घिसते हुए
शायद इनमें कोई चमक पैदा हो

इस सुनसान में
उजाले में रहना–बड़ा मुश्किल है
अँधेरे में तो फिर भी, नींद का सहारा होता है
सभी सोये हुए हैं–बेफिक्र
उन्हें पता नहीं है–उन्हें कहाँ जाना है—
मुझे नींद नहीं आती—मैं बेचैन हूं
मुझे जानना है—मुझे कहाँ जाना है ?

सीख

मैंने तो सिर्फ
एक गड्ढे में अंगुली डुबो कर
सिर्फ इतना बताना चाहा
कि ये देखो/यहाँ
ठीक सड़क के बीचों-बीच खून है !

मैंने तो सिर्फ
कोठरी की दीवार की तरफ इशारा करके
इतना भर कहना चाहा
देखो ! कैद हवा
यहाँ से रूख बदलती है—
चहल कदमी के दौरान-सिर पटकती है
यहाँ/बन्द रोशनदान के कपाटों पर

मैंने तो सिर्फ
इतना कहना चाहा था—
सच न नंगा होता है
न कपड़े पहने हुए
दर असल, मैं तो सिर्फ सच बोलना चाहता था,
उन्होंने मुझ सीख दी
"तेते पाँव पसारिये जेती लाम्बी सौर"।

जंगल की आग

जो जंगल में से गुजरना चाहते हैं
घनघोर जंगल में से
उन्हें झाड़ियों से नहीं डरना चाहिये
और न ही परवाह करनी चाहिए
पगडण्डियों की
जंगलों में से गुजरते हुए
'जंगल की आग' भी देखनी पड़ती है
जंगल की आग में
सभी रास्ते, पगडण्डियां
असहाय हो
धुएं से घुटने लगते हैं
धू-धू करके जलने लगती हैं
सभी, छोटी बड़ी, अच्छी बुरी झाड़ियां
जंगल, में से गुजरने वालों को
जंगल की आग जरूर देखनी चाहिए
जंगल में आग लगाने वाले का पता
आज तक कोई नहीं लगा सका
लोग तो यहां तक कहते हैं
यह आग ! अपने आप लगती है
सच ! बड़ी तकलीफ होती है
जब अपने पांवों के नीचे की जमीन सुलगती है
और आग लगाने वाला
ना मालूम होता है ।

अपने पांवों के लिए

हमें खुद चीरनी होगी
अपनी सगी माँ की छाती
ढूंढ लेने होंगे वो मकान
जिनमें बंधक रखे हैं-अपने पांव।

हम जर खरीद गुलाम नहीं है
किसी भी अनिश्चित उड़ान के.
खुद कतर-ब्योंत करनी होगी हमें
अपने सुनहले पंखों की
हमें निश्चित कर लेनी चाहिए
अपनी बस्तियाँ
अपने रास्ते
अपने पंख, अपने आसमान

जमीन के कई फुट नीचे
यानि आदमी के पावों की दिशा में
काफी नीचे तक खोदते रहने के बाद
मिल जाता है, बहता हुआ साफ पानी

जिन लोगों को पानी की जरूरत है
उन्हें, अपने पांव ढूंढने चाहिये।

जिहाद

सूरज, क्या कभी
किसी की मुट्ठी में बन्द हो सकता है ?
रोशनी, क्या कभी
किसी तिजोरी में कैद हो सकती है ?
यदि तुम कहते हो
अमुक सूरज–मुट्ठी में बन्द है
या फलां रोशनी–तिजोरी में कैद है
तो, मैं/
उस अमुक और फलां को
सूरज या रोशनी
मानने से इन्कार करता हूं

हां आग !
आग जरूर पिछले कुछ दिनों से गायब है
कभी-कभार नजर भी आती है, तो
जलते हुए रबड़ की गंध के साथ
तो आओ !
एक जिहाद शुरू करें
किसी सूरज को आजाद कराने
या किसी रोशनी की
जमानत करवाने के लिये नहीं

बल्कि
कोई भी दो चट्टानें टकराकर
आदिम तरीके से
मौलिक आग पैदा करने के लिये ।

अग्नि रेखा खींचो

हवा, जब अनमनी औ उदास हो
गहरे तपे तवे सा
नीला हो जाए क्षितिज
दिशाओं के पास इकट्ठे हो जाएँ
जब गर्द भरे बादल
तुम्हारी आँख में भर जाए
बहुत सारा कोहरा।
तुम्हारे कान थक गए हों
लगातार सुनते-सुनते
अविश्वास का टूटता संगीत।
रह-रह कर उठते हों
तुम्हारे आस पास
सड़े हुए दही की दुर्गन्ध के भभूके
जब तुम भूल चुके हो भरोसा
अपने शरीर के अंगों का—
ऐसे वक्त रंग का खेल खेलना चाहिये
आसमान के ठीक बीचो-बीच
खींच देनी चाहिये
एक आग की लकीर
आग, यदि तुमने मनसे बोई है
तो मौसम के बदलने का इंतजार मत करो
आग जब-जब भी मनसे बोई जाती है
उजाले का जंगल उगता ही है
तब तिनके तिनके जल जाती है-अनास्था!
तब रेशे-रेशे जल जाता है-अविश्वास!

आग का खेल खेलो

हवा जब बजाती फिरे
खतरे की सीटियाँ
आसमान जब देने लगे
अविश्वास का धुआँ
माहौल जब भर जाए
कचरे और सीलन से
तब/बिलकुल भी मत डरो
उमंगहीन नसीहतों से
आग का खेल खेलो ॥

अपने आप से बेखबर/उदास
कोने में पड़े हों आतिशदान
सड़कें करती फिर रही हों
सरे आम सन्नाटे का एलान
दहशत के खिलाफ/तब
राग का खेल खेलो
बिलकुल भी मत डरो
उमंगहीन नसीहतों से
आग का खेल खेलो ।

तुम्हारा रंग ज्यादा ताजा है
ताजा फूलों के रंग से भी
तुम ज्यादा गंधमय हो
धरती की गंध से भी
....

टहनी से टूट कर गिर रहे
पत्तों के प्राण का संगीत सुनो
सोओ नहीं, सोओ नहीं
आग का खेल खेलो
बिलकुल भी मत डरो
उमंगहीन नसीहतों से
आग का खेल खेलो ॥

उस रात

रात
स्वयं स्वप्न बन गई थी–उस रात
धुंधलका ओढ़े
सड़कों पर मुस्तैद—निस्तब्धता
हवा के साथ
जबरदस्ती घिसटते सूखे पत्ते
अनन्त तक फैले तारों पर
तैरता खौफनाक संगीत
मैं चौंक—चौंक उठता था
डर कर—उस रात
गली में, बाहर
घोर नीरवता के बीच
कुत्तों की दहशत भरी—
रिरियाने की आवाज
खट्—खट् बजती
घोड़ों की टापें
सिर से पांव तक
दौडती रहीं/डर की लहरें
मलेरिया की सर्दी की मानिन्द
उस रात

हिम्मत करके
उठकर दरवाजा खोला
बाहर झांका,
सब लोग जा चुके थे—
पता नहीं कहाँ ?
सारा शहर वीराने से गूंज रहा था !
हवा के झोंकों से
गली की इमारतों की/ऊपर की मंजिल की
खिड़कियों के पट-सिर पटक रहे थे
अपनी-अपनी चौखट पर—उस रात/दरवाजे
अपने आप खुल रहे थे
बन्द हो रहे थे
रात ! स्वयं स्वप्न हो गई थी
उस रात /
मैं फिर से मुंह ढक कर सो गया

सुबह बिलकुल शान्त थी
धुली हुई सफेद चादर सी
हवाओं में थी
धूप और अगर की पवित्र गंध
सकून का सांस ले रही थीं
पेड़ों की पत्तियाँ/उदास लटकी हुई
एक तूफान आकर गुजर गया था
उस रात

सड़क पर अस्पष्ट से
नजर आ रहे थे
खून के पदचिन्ह
चुपचाप रो पड़ा मेरा मन
सचमुच !
मेरी आत्मा के साथ
बलात्कार किया था धर्म ने
उस रात !

आतंक

जब, कुत्तों ने सूंघ लिया था
सन्नाटे में तैरता—खतरा
खड़्—खड़् बजने लगे थे
हवा के हिलने से
जमीन पर पड़े पत्ते
चलते—चलते/शरीरवत्
हो गई थी मेरी परछाई
गरदन घुमाकर पीछे देखते भी
घबरा रहा था मैं

बजबजा कर उतर पड़ा था—वह
शाम को ही—कस्बे के बाजार पर
उदास सी सिमट गई रोशनी
बिजली के खम्भों के आस-पास
तब—अपने घर के किवाड़ बन्द किये
पीली लालटेन के कन्धों से
मैं अकेला ढो रहा था
बहुत सारा अंधेरा
अकेला था-मैं ; नितान्त अकेला ।

रेडियो धर्मिता

धर्म ! अब धर्म नहीं रहा
रेडियोधर्मी हो गया है—वह
और रेडियोधर्मिता के प्रभाव—
चाव से देख रहे हैं—हम सब
सचमुच, कितने विलक्षण हैं !

उन सबके चेहरे पीले हैं
बेजुबान लोगों के हाथों में हैं
अब सिर्फ धर्मध्वजाओं के डण्डे
वे बोलते हुए लड़खड़ाते हैं
चलते हुए लंगड़ाते हैं
उनकी जुबान पर असर है
खानदानी लकवे का
या आनुवांशिक पक्षाघात का
वर्ना वे, बात-बात में तुतलाते क्यों हैं ?

क्या हमने नहीं सुने बहुत से उड़ानटप्पू किस्से

स्कूलों से मास्टर गायब हैं
और कटोरदानों से रोटियां
वे सब/चोड़ियां बांधती हैं
उन सबकी/चड्डियां फटी हैं
वे सिर्फ/नाई हैं, चमार हैं

जुलाहे हैं, हम्माल हैं, दर्जी हैं
वे सबके सब/भले/बेकसूर/बेजुबान लोग
जुट पड़े हैं—खुदा को तलाशने

सभी अखबार भरे पड़े है
लाल-पीली बेहूदा, भदरंग खबरों से
मजहब की पीक-क्या निगली नहीं जा सकती ?

पता नही कब उग आई
उनके अन्दर/बेहिचक, अपने आप
तेज अफीम के नशे की कद्दावर फसल
लगता है इस बार किसी ने
हवा की बारीक नलियों में/शिराओं में
शोर की जगह नशा भर दिया है
हवा/अब सिर्फ नारे नहीं लगाती
बाज वक्त पूरी ताकत से बहकती है
उमड़ती है—घुमड़ती है
उमसती है—उठंगती है
वे/सबके सब बेखबर हैं
उन्हें पता ही नहीं
नशा जब खिलता है—अपनी पूरी तपान के साथ
बुरी तरह छा जाता है

पुराने दमे की तरह होता है उसका प्रसार

छाती/जीभ/फेफड़ों
पेट/मुंह/हाथ/नाक/कान पर
तेज—तेज सांस चलने लगती है
दम घुटने लगता है
आंखों पर छा जाता है—अजीब सा धुंआं

मरीज/सब बेखबर हैं
उन्हें कौन समझाए
तुम्हें न ब्लड-प्रेशर है/न टी० बी०
न ही तुम्हारे खून में कैंसर का कीड़ा है
वातज/पित्तज/कफज—कुछ भी नहीं
तुम्हारे लक्षण बता रहे हैं
तुम्हें/सिर्फ धर्म—पीड़ा है

धर्म ! अब धर्म नहीं रह गया
रेडियो धर्मी हो गया है
और रेडियो धर्मिता के प्रभाव
हम सब चाव से देख रहे हैं
सचमुच, कितने विलक्षण हैं ?

बच्चे

"बच्चे जीवन के फूल होते हैं"
—क्या सचमुच, वे होते हैं ऐसे ?

निर्दयी होकर पीटती है
दुबली पतली औरत
कमजोर बच्चे को सुबह-ही-सुबह
(किसी भी वजह से ; मसलन प्याली फोड़ने पर)
फिर दिन भर कातती है
अपने मन के चरखे पर
लाल तांबे का तार
घुंडियों पर लिपटता जाता है
नीली, आसमानी, हल्की जामुनी—
आंखों का/कच्चा सूत
अपने दोनों घुटनों के बीच
गोदी में लेकर
अपनी छाती से चिपटा कर
अपने आंचल से रोती है
वह/जार—जार पानी
बच्चे/हुमक-हुमक कर
अपनी मां के आंसू पीते हैं
क्या सचमुच वे जीवन के फूल होते हैं ?

बच्चे बाग बगीचों, जंगलों में नहीं उगते
वे हमारे घरों में रहते है
वे ढूंढते हैं अपने आस-पास
अपनी आंखों से
सिर्फ अहसास
उनकी सूनी, भोली आँखों से
समझ की पहली सीढ़ी के साथ
विटर—विटर ताकती है—असुरक्षा !
वे/अपनी माँ की गोदी में
बिसूर—बिसूर कर रोते हैं
उसके जोड़ों के दर्द की तरह
उनके अहसास की सन्धियों में
भरता जाता है
मां के जोड़ों का दर्द
और आँखों में
अपने बाप की आँखों का मोतिया बिन्द।

किसी भी दीक्षान्त समारोह पर

आग्रो !
मैं तुम सब लोगों का स्वागत करता हूं
इस घर के आंगन के बाहरी दरवाजे पर
जहां से/तुम
अभी-अभी
कहीं न कहीं
जाने के लिए निकलने वाले हो
यह दरवाजा !
कि जिसके बाद शुरु होता है
एक आग का जंगल
यह जानकर भी/अब संभव नहीं है
मां/जब बीमार होती है
तुम्हें चारों ओर से
कच्चे आंगन में गिरी
पकी निबोलियों की गंध
तुम्हारी कच्ची बांस की टांगों में
उग आई हैं/आंखें
तुम ढूंढने लगे हो
अब कोई आसमान/अपनी आंखों के लिये
या फिर तुम्हारे कंधे
महसूस करने लगे हैं
नये-नये उगने वाले पंखों की खुजलाहट

ग्राग्रो !
मैं इस दरवाजे की
पत्थर की देहरी पर गिरने वाले
तुम्हारे प्रथम चरण का स्वागत करता हूं
ग्राँखों के लिए ?
सचमुच मुझे कष्ट होता है
तुम्हें सूचना देते हुए
कि बाहर बहुत धुंधला है-ग्रासमान !
दूर—दूर तक
कुहासा छाया हुग्रा है
ठेठ दिशाग्रों की जड़ों तक
मुझे तो शक लगता है
तुममे से कोई
ढूंढ भी पाए
एक फांक रोशनी
मौसम विभाग की सूचना भी—
जान लेना जरूरी है
" सूरज ग्रभी कई दिनों तक
दिखाई देने के ग्रासार नहीं हैं " ।
लेकिन कोई बात नहीं—
इस सबके बावजूद
तुम्हारा घर से निकलना
मुल्तवी नहीं किया जा सकता ।

हवा के बारे में

हवा मरती नहीं
कभी-कभी
बीमार या कमजोर जरूर हो जाती है
हवा को सन्निपात हो सकता है
लकवा/मिर्गी के दौरे
हृदय रोग या दम घुटने की बीमारी
यूं वैसे, अमूमन
हम, हवा की खास अहमियत न समझते हों
लेकिन हवा का बीमार होना
कई वक्त मरणासन्न हो जाना
कोई मामूली घटना नहीं होता
हवा/जब बीमार होती है
तब, इतनी जोर से
उठा-उठा कर पटकती है
अपने हाथ पांव
कि जमीन में गहरे धंसे
पेड़ों तक की जड़ें हिल जाती हैं
कई-कई बार बदलते है
आसमान के स्थाई रंग
धूल से धुंधला जाती है
पखेरुओं की दृष्टि
कांप-कांप जाते हैं
कमजोर लताओं के अस्थिहीन जिस्म

धरती के अन्दर ही अन्दर
इधर से उधर दौड़ती हैं
गर्म पानी की लहरें
तब तड़फ जाते हैं
जमीन के प्यासे पपड़ाए होंठ
ऐसे में कई बार—
सरकारी मौसम विभाग
घोषणा कर चुका होता है
हवा के मर जाने की
प्रार्थनागृहों से बजने लगते हैं
ठण्डी सीत्कारों के टेप
घर लेते हैं हमें—
दिशाओं के शुष्क उच्छ्वास !
प्रलय की घोषणाएं
निराशाओं के उद्घोष !
मृत्यु के जय निनाद !!

लेकिन डरो मत
हवा खा कर जीने वाली मासूम भेड़ों !
कुछ लोग नियत हैं
हवा की परिचर्या के लिये
वे दिनरात दौड़ रहे हैं
स्ट्रेचर लिये, राहत शिविरों में
इधर से उधर

तत्पर हैं वे
हवा को निरोग कर देने के लिये
वे मना कर रहे हैं
किसी भी राजनैतिक शवयात्रा में सम्मिलित होने से
उनका जोर से बोलना
शरीयत की निगाह में गुनाह है
वे सब/अतृप्त हैं
आकण्ठ प्यासे हैं/आजादी के लिए/स्वास्थ्य के लिए
उनके हाथों में है
मशालों की कष्ट साध्य रोशनी
सारी तकलीफों/बीमारियों,जेलों/अस्पतालों/
सड़कों के बीच
वे निरन्तर भुगत रहे हैं प्रसव पीड़ा
परख रहे हैं/किसी भी बरसात से पहले की तरतीब
उन्हें यक़ीन है
हवा कभी भी मरती नहीं
बरसात जब होने ही वाली हो
तो उसके होने से पहले
सभीका/दम घुटने सा लगता है।

धरती के अन्दर ही अन्दर
इधर से उधर दौड़ती हैं
गर्म पानी की लहरें
तब तड़क जाते हैं
जमीन के प्यासे पपड़ाए होंठ
एसे में कई बार—
सरकारी मौसम विभाग
घोषणा कर चुका होता है
हवा के मर जाने की
प्रार्थनागृहों से बजने लगते हैं
ठण्डी सीत्कारों के टेप
घर लेते हैं हमें—
दिशाओं के शुष्क उच्छ्वास !
प्रलय की घोषणाएं
निराशाओं के उद्घोष !
मृत्यु के जय निनाद !!

लेकिन डरो मत
हवा खा कर जीने वाली मासूम भेड़ों !
कुछ लोग नियत हैं
हवा की परिचर्या के लिये
वे दिनरात दौड़ रहे हैं
स्ट्रेचर लिये, राहत शिविरों में
इधर से उधर

मौत उगी गहे ?'64

तत्पर है वे
हवा को निरोग कर देने के लिये
वे मना कर रहे हैं
किसी भी राजनैतिक शवयात्रा में सम्मिलित होने से
उनका जोर से बोलना
शरीयत की निगाह में गुनाह है
वे सब/प्रतृप्त है
आकण्ठ प्यासे हैं/आजादी के लिए/स्वास्थ्य के लिए
उनके हाथों में है
मशालों की कष्ट साध्य रोशनी
सारी तकलीफों/बीमारियों/जेलों/अस्पतालों/
सडकों के बीच
वे निरन्तर भुगत रहे है प्रसव पीड़ा
परख रहे हैं/किसी भी बरसात से पहले की तकलीफ
उन्हे यकीन है
हवा कभी भी मरती नहीं
बरसात जब होने ही वाली हो
तो उसके होने से पहले
सभीका/दम घुटने सा लगता है ।

लोग जहाँ खड़े हैं

लोग मरते नही
हां मगर ! थकते जरूर हैं
एक पीढी मर रही है
एक नस्ल उग रही है

लोग जहां खड़े है
उनके आस-पास/इर्द-गिर्द
गीली और नम जमीन है
जो उनके अन्दर भरती जा रही है
निरन्तर/गहरी ठण्डी सीलन
उनके चेहरों पर गालिब है
सिर्फ तनहाई
उनकी बीमार तबियत की वजह ?
–कि वो अपने लिये ढूढते ही नही
कोई मजबूत जमीन
–कि उन्हें शौक ही नही है
अपने लिये पसीना बहाने का
कुछ अफसोस कर रहे हैं
अपना वक्त गुजर जाने का
और कुछ इन्तजार कर रहे हैं
उनका जमाना आने का

सच ! उन्हें पता ही नहीं
वे कहाँ जा रहे हैं ?

अरे रूको !
रूको ! रूको !
इन्हें अपनी एक बात तो देते चलें
इन्हें अपनी याद तो आएगी
इसी बहाने
वर्ना तो/ये भूल चुके हैं
याद करना
अपने आप को भी

रूको ! रूको !!
इन्हें एक बात तो देते चलें
लौटते वक्त –
ये जागते मिले
तो इन्हें एक सपना देंगे

लोग जहाँ खड़े हैं
उनके आस-पास/इर्द गिर्द
खोखले ठहाके हैं
उनके प्राण बन्द हैं
दूर.........कहीं गहरी बावड़ी में

जिसके चारों तरफ
बना हुआ है
एक मजबूत-पत्थर का किला
—डरावना

अरे रूको!! रूको!!!
इन्हें एक आंख तो देते चलें
लौटते वक्त-
अगर ये जागते मिले
तो इन्हें अपने हाथ देंगे
-पांव देंगे
और अगर/जागते मिले/ये
निष्प्राण भी/तो
इन्हें हम अपने प्राण देंगे।

स्वभाव – १

कई बार
हम अपने स्वभाव के पीछे पड़ जाते हैं
चाहते हैं प्यार करना
मगर लड़ने लग जाते हैं ।

स्वभाव – २

हम सब सपेरे हैं
सांप पालते है और जहर पीते हैं
मौत से खेलते है/फिर भी जीते हैं
मौज !
मौत हमारे इतनी नजदीक है
—कि जब जी चाहा
जेब में हाथ डाल कर
नोट निकाला
और छुट्टे करा लिये ।

घास

बहुत भीड़ थी
लोग चल रहे थे पास-पास
पालकनों में से बच्चा चिल्लाया
देखो रे !
सड़क पर उग आई घास ।

बर्फ

घाटियों में गिरती
ताज़ा बर्फ
बड़े से टब में जैसे
कोई घोल रहा सर्फ ।

आकाशवाणी

कई बार
जब हम मातम नही मानना चाहते
लम्बी ठण्डी उदास और थकी हुई
ताने सुनाकर
हमें रोने के लिए मजबूर किया जाता है
हमारी फरमाइश पर
सिर्फ गाने सुनवाए जाते है
खबरें
कभी भी हमारी पसन्दीदा नहीं होती ।

यकीन

शहर की दीवारो पर
कई पोस्टर लगे हैं
"अफवाहों पर यकीन मत कीजिए"
मेरी समझ में नहीं आता
पोस्टरों पर यकीन करूं
या अफवाहों पर ।

शहर – १

ये शहर
आदमियों का जंगल है
सड़क/अजगर सी पड़ी है
धुंआं धमनियों में
और लहू चिमनियों में बसता है
'स्नेक गार्डन' में
डर किस बात का भला
कोई सांप मरता है ?

शहर – २

गजब की फुर्ती है—इस शहर में
—कि दिन !
सड़कों पे सरपट दौड़ा करता है
गजब की आराम तलबी है–इस शहर में
हर शाम !
फुटपाथ पर ही पसर जाती है
बड़ी अव्यवस्था है–इस शहर में
यहाँ हर रात ! भटक जाती है
मेरी समझ में नहीं आता
यह शहर है–या सर्कस का खेमा ?
यहाँ हर रोशनी
लेम्प पोस्ट पर औंधी लटक जाती है
पर सबसे अजीब बात तो–यह है मेरे दोस्त !
—कि मैंने उस शहर को
कभी भी /
सुबह को अंगड़ाई लेते हुए नहीं देखा ।

हालात

मैंने सोचा भी न था—अभी तक
—कि इन हालात से गुजरना होगा / हमें

मैं तो सिर्फ गिनता रहा
खाली खेत में चरती
सफेद भेड़ों को
कपास के जिन्दा पौधों की शक्ल में

वक्त इस तरह से बदला
कि आदमी से उसका नाम पूछो
वो, कमीज उठाकर
अपना पेट दिखा देता है

सवाल

क्या निहायत ही गैर जरूरी हैं
वे सभी सवाल
जिनका जवाब धर्मशास्त्रों के पास नहीं है
नहीं न !
तो फिर आपने
क्यों छुपा दिये है
शहर के सभी आइने
हमें/अपने सवालों का अक्स देखने दीजिए ।

विश्वयुद्ध

यह आवश्यक तो नहीं
कि सभी युद्धों का आधार
सिर्फ घृणा हो
क्या प्रेम की महती आकांक्षाओं के लिये
निर्णायक युद्ध नहीं लड़े जा सकते ?

पूर्णता से परिपूरित
ओ गंधाश्वरोहियों !
आओ
प्रेम की उदात्त भावनाओं से प्रेरित
एक घमासान विश्वयुद्ध रचें
'अप्रेम' के खिलाफ ।

रेत

रेत/कुछ नहीं कहती है
रेत/चुप रहती है
रेत/उड़ती है/टूटती है
कटती है/तपती है/जलती है
बिखरती है/गलती है
या फिर यूं ही पड़ी रहती है
रेत/सब कुछ सहती है
इसके बावजूद चुप रहती है
कुछ नहीं कहती है
कारण ?
शायद कुछ लोग जानते हों
हर रेगिस्तान के नीचे
एक नदी बहती है
जिस दिन रेत के नीचे से
नदी बहना बन्द हो जाएगी!
आप सच मानिये
रेत/बोलने लग जाएगी ।

चिड़िया से

क़ई सवाल
चिड़िया के पंखों से नहीं
उसके पंजों या चोंच से पैदा होते हैं
जब चिड़िया
तेज आंधी में
मजबूती के साथ
अपने दोनों पंजों से
पकड़ती है
किसी पेड़ को टहनी
या अपने मुंह का दाना
देती है
अपने छोटे बच्चे की चोंच में

हम हर बार
चिड़िया से
सिर्फ उड़ना ही क्यों सीखते हैं
जिन्दगी को मजबूती के साथ पकड़कर
उससे प्यार करना क्यों नहीं ?

किताब

बिना जिल्द के बंधी हुई
पन्ने-पन्ने बिखरी हुई थी वह
शहनाई की चिनचिनाहट थी उसमें
रोशनियों का आफताब थी वह
कई सारे सवालों की माँ थी
कई सारे जवाब थी वह
मैंने उससे कहा—
जरा, एक बार और चूमो तुम मुझे
सचमुच !
एक अच्छी किताब थी वह ।